दैनिक भास्कर

Date:14-03-24

ईडी और राज्य सरकारों के बीच तकरार कैसे थमेगी?

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट की एक बेंच ने राज्यों से कहा है कि वे ईडी के साथ सहयोग करें। इसके चार हफ्ते पहले इसी कोर्ट की एक अन्य बेंच ने कहा था, 'ईडी और राज्य सरकारों के बीच प्रतिशोध की भावना से कार्रवाई न हो, यह सुनिश्चित करने के लिए एक मैकेनिज्म तैयार किया जाए। कानून तोड़ने वाला बच कर न निकले यह जरूरी है, लेकिन प्रतिशोध, दुर्भावना या हवा में चोर पकड़ने के अर्थहीन प्रयास से कार्रवाई नहीं होनी चाहिए।' एक ही कोर्ट की दो बेंच की दो सर्वथा विपरीत आशय वाली टिप्पणियों से कंफ्यूजन बढ़ गया है। हाल के दौर में प्रिवेंशन ऑफ मनी लॉन्डरिंग एक्ट (पीएमएलए) के कई प्रावधानों ने ईडी को निर्बाध शक्तियां दी हैं, जिनसे राज्य के अधिकारों का हनन हो रहा है। कई मामलों में राज्यों ने आरोप लगाया है कि ईडी के पास कोई जानकारी न होने पर स्थानीय कलेक्टर्स को तलब कर उनसे तथ्यों की जानकारी लेकर केस बनाने की कोशिश की जा रही है। हालांकि पीएमएलए का 'शेड्यूल्ड ऑफेंस' का दायरा काफी व्यापक है, लेकिन कानून के प्रावधान केवल उन्हीं अपराधों में ईडी को शक्ति देते हैं जिनमें राज्य सरकारें पहले से मुकदमा कर चुकी हों। लेकिन पूर्व के एक फैसले में कोर्ट कह चुका है कि बगैर किसी प्रेडिकेट अपराध' के भी ईडी धन शोधन के खिलाफ कार्रवाई कर सकती है। इस आधार पर ईडी ने कार्रवाई का विस्तार कर लिया, जिसके खिलाफ विपक्ष - शासित राज्य आवाज उठा रहे हैं।

Date:14-03-24

लोकतंत्र में परिवारवाद नहीं ,टैलेंट पूल जरूरी होता है

मिन्हाज मर्चेंट, (प्रकाशक और संपादक)

2024 के लोकसभा चुनावों में एक महत्वपूर्ण फैक्टर वंशवादी राजनीति की असंगत भूमिका का रहेगा। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा वंशवादी राजनीति या परिवारवाद की आलोचना से आहत होकर बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव ने तुरंत प्रतिक्रिया दी है। उन्होंने कहा है कि मोदी राजनीति में परिवारों के प्रभाव को नापसंद करते हैं क्योंकि उनका खुद का कोई परिवार नहीं है। यकीनन, लालू राजनीतिक वंशवाद के सिद्धांत में दृढ़ता से विश्वास करते हैं। जब चारा घोटाले के बाद उन्हें बिहार के मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा देने के लिए मजबूर होना पड़ा था तो उन्होंने अपनी पत्नी राबड़ी देवी को राज्य का मुख्यमंत्री नियुक्त करवा दिया था। वे 1997 से 2005 तक आठ साल की अवधि में तीन बार इस पद पर रहीं। मानो इतना ही काफी नहीं था, इसके बाद लालू अपने दो बेटों को भी राजनीति में ले आए : तेजस्वी उपमुख्यमंत्री बने और तेज प्रताप कैबिनेट मंत्री । वहीं बेटी मीसा भारती को उन्होंने राज्यसभा सांसद बनाया। मालूम होता है लालू यादव के लिए राजनीति परिवार के लिए है और परिवार राजनीति के लिए है। लेकिन यह सिद्धांत लगभग हर प्रमुख दल पर लागू होता है, जम्मू-कश्मीर में अब्दुल्लाओं और मुफ्तियों से लेकर तमिलनाडु में करुणानिधियों तक।

वंशवादी राजनीति के बचाव में बौद्धिक तर्क दो धुरियों पर टिका है। एक, लोकतंत्र में राजनेता निर्वाचित होते हैं और चुनाव ही उनकी वैधता है। दूसरा, अगर अभिनेताओं, कारोबारियों और यहां तक कि डॉक्टरों के बेटे-बेटी भी अपने परिवार के नक्शेकदम पर चलते हैं, तो राजनीति इससे अलग क्यों होनी चाहिए? इसका दोटूक जवाब यह है कि राजनीति इनसे अलग है। संसद और विधानसभा लोकतंत्र के दो स्तंभ हैं। उनकी जिम्मेदारी है कि वे जनता की पसंद को व्यापक बनाएं, संकीर्ण नहीं। यदि वे चुनावों में केवल एक परिवार के सदस्यों की पेशकश करते हैं तो मतदान करने वाली जनता को मिलने वाले विकल्प सीमित हो जाते हैं। अमेठी का उदाहरण लें। 2019 में कांग्रेस इस निर्वाचन क्षेत्र के लिए राहुल गांधी से आगे नहीं देख सकी। राहुल स्मृति ईरानी से हार गए। अगर कांग्रेस परिवार संचालित पार्टी नहीं होती तो वह योग्यता के आधार पर अमेठी के लिए उम्मीदवार चुन सकती थी। टैलेंट पूल जितना व्यापक होगा, किसी राजनीतिक दल के लिए योग्य विकल्प भी उतने ही अधिक होंगे। इससे मतदाता व निर्वाचन क्षेत्र दोनों को लाभ होता है। वंशवादी नेता अक्सर चुनाव जीतने के बाद अपने लिए काम करते हैं, वो परिवार को पहले और मतदाताओं को बाद में रखते हैं। इससे भ्रष्टाचार फैलता है। यदि परिवार - संचालित पार्टियां जानती हैं कि मतदाता अपनी सामंती वफादारी के चलते एक ही परिवार के सदस्य को वोट देंगे तो उनके सामने मतदाताओं के कल्याण के लिए काम करने का क्या प्रोत्साहन शेष रह जाता है? वो अपने परिवार केही कल्याण के लिए क्यों नहीं काम करेंगी ? यही कारण है। कि लोकतंत्र में मतदाताओं के सामने मौजूद विकल्पों को व्यापक बनाना जरूरी है। तब अपने परिवारों को बढ़ावा देने वाले अभिनेताओं, डॉक्टरों और कारोबारियों के बारे में क्या? अव्वल तो उनकी मतदाताओं के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं होती। वे जिस पेशे में रुचि रखते हैं, उसे अपनाने को स्वतंत्र रहते हैं। कारोबार घरानों में शेयरधारक होते हैं, जो प्रबंधन के उत्तराधिकार का निर्णय लेते हैं। वहीं राजनेताओं की तरह अभिनेताओं के नैतिक कर्तव्य नहीं होते।

एक तर्क यह भी दिया जाता है कि वंशवादी राजनीति पूरी दुनिया में ही चलती है। यह पाकिस्तान, बांग्लादेश और श्रीलंका के साथ-साथ एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के कुछ अन्य देशों में भी है। कहा जाता है कि क्या जॉर्ज बुश वंशवादी नहीं थे? वे थे, लेकिन अमेरिकी राजनीति में वे एक अपवाद हैं, नियम नहीं। पिछले लगभग 250 वर्षों में अमेरिका में केवल तीन वंशवादी राष्ट्रपति हुए हैं- एडम्स, हैरिसन और बुश रूजवेल्ट्स (थियोडोर और फ्रैंकलिन) दूर के रिश्तेदार थे। लेकिन अमेरिका में कोई कैनेडी घराना नहीं है। ब्रिटेन में कोई चर्चिल घराना नहीं है। फ्रांस में कोई डी गॉल

घराना नहीं है। पूर्व ब्रिटिश प्रधानमंत्रियों- टोनी ब्लेयर और मार्गरेट थैचर के बच्चे राजनीति से बाहर नौकरियां कर रहे हैं। राहुल और प्रियंका गांधी ऐसा क्यों नहीं कर सकते? सुप्रिया सुले, उमर अब्दुल्ला और अखिलेश यादव क्यों नहीं?

और भाजपा के बारे में क्या? हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री प्रेम कुमार धूमल के बेटे अनुराग ठाकुर की ओर इशारा करते हुए आलोचकों का कहना है कि यह पारिवारिक वंशवाद को बढ़ावा है। लेकिन राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, असम और हरियाणा में भाजपा के मुख्यमंत्रियों में कोई वंशवादी नहीं है। जैसा कि मोदी ने स्पष्ट रूप से कहा, सोनिया राहुल को पीएम बनाना चाहती हैं, उद्धव आदित्य को सीएम बनाना चाहते हैं और ममता अभिषेक को कमान सौंपना चाहती हैं। पर भारतीय राजनीति में कोई मोदी घराना तक नहीं है। प्रधानमंत्री के भाई गुजरात में छोटे फ्लैटों में सेवानिवृत्त जीवन जीते हैं।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:14-03-24

पूर्वोत्तर में नागरिकता की ज्यादा चिंता

प्रभाकर मणि तिवारी

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, यानी सीएए के लागू किए जाने की अधिसूचना जारी होते ही पश्चिम बंगाल के साथ समूचे पूर्वोत्तर भारत में इसके खिलाफ विरोध-प्रदर्शन शुरू हो गया है। अंतर यह है कि पश्चिम बंगाल में जहां ममता बनर्जी सरकार इसकी मुखालफत कर रही है, तो पूरे पूर्वोत्तर में छात्र व सामाजिक संगठन और विपक्षी राजनीतिक दल। इस कानून का सबसे ज्यादा विरोध पूर्वोत्तर का प्रवेश द्वार कहे जाने वाले असम में हो रहा है। इस विरोध-प्रदर्शन की कमान राज्य के ताकतवर छात्र संगठन अखिल असम छात्र संघ (आसू) के हाथों में है। उसके बैनर तले इस कानून के खिलाफ जगह-जगह मशाल जुलूस निकाले जा रहे हैं। यह संगठन भी अब इस मुद्दे पर अपने सवाल लेकर सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाने जा रहा है।

असम समेत पूर्वोत्तर के ज्यादातर राज्यों में भाजपा व उसका गठबंधन सत्ता में है। जाहिर है, केंद्र ने इसे लागू करने के नतीजों का गुणा-भाग किया ही होगा। हालांकि, असम के मुख्यमंत्री हिमंता बिस्वा सरमा का दावा है कि आसू जैसे संगठनों व विपक्ष के विरोध का आम चुनाव पर कोई असर नहीं होगा। उन्होंने विरोध करने वाले संगठनों से कड़ाई से निपटने की बात भी कही है। हिमंता ने साफ कहा है कि अगर किसी को इस कानून पर ऐतराज है, तो वह अदालत की शरण में जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा है कि अगर राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) के लिए आवेदन नहीं करने वाले एक भी व्यक्ति को नागरिकता मिलती है, तो वह इस्तीफा देने वाले पहले व्यक्ति होंगे।

फिलहाल भाजपा इस बात का प्रचार करने में जुट गई है कि इस कानून के लागू होने के बाद असमिया लोगों पर कोई खतरा नहीं पैदा होगा। पार्टी का कहना है कि विपक्षी दल और कुछ संगठन इस कानून की गलत व्याख्या करके आम

लोगों को गुमराह करने का प्रयास कर रहे हैं। सरकार ने इससे संबंधित नियमों में उनकी भाषा, संस्कृति व पहचान सुरक्षित रखने के लिए ठोस कदम उठाने का भरोसा दिया है।

वहीं, पूर्वोत्तर में विपक्षी कांग्रेस और त्रिपुरा व मेघालय के स्थानीय आदिवासी राजनीतिक दल इस मुद्दे को भुनाने में जुट गए हैं। त्रिपुरा में टिपरा स्टूडेंट्स फेडरेशन की दलील है कि यह कानून आदिवासियों के हितों के खिलाफ है। इससे इस तबके के लोग अपने ही घर में बेगाने बनने को मजबूर हो जाएंगे। मेघालय में तमाम आदिवासी संगठन इस कानून के खिलाफ एकजुट हो गए हैं। ऐसे में, अंदेशा यही है कि इस कानून से भाजपा को पूर्वोत्तर में चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, लेकिन ज्यादातर राज्यों में सत्ता में होने और अपने संगठन की मजबूती के कारण मौजूदा हालात से निपटने का उसे पूरा भरोसा भी है। दूसरी ओर, कांग्रेस ने तमाम विपक्षी दलों को लेकर एक साझा मंच बना लिया है और इस कानून के विरोध में सड़कों पर उतर आई है।

पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी भी सीएए और इससे होने वाले कथित नुकसान को अपना प्रमुख चुनावी मुद्दा बनाने का प्रयास कर रही हैं। उन्होंने इस कानून को बंगाल के दोबारा विभाजन का खेल बता दिया है। वह सवाल उठा रही हैं कि केंद्र चार साल तक इस मुद्दे पर चुप क्यों रहा? वह इसे बंगाल को विभाजित कर बंगालियों को देश से खदेड़ने की कोशिश के तौर पर मुद्दा बनाने में जुट गई हैं।

हालांकि, यहां एक तबका ऐसा भी है, जो इस कानून के लागू होने से बेहद खुश है। मतुआ समुदाय के ये लोग उत्तर और दक्षिण 24 परगना जिले के अलावा नादिया जिले में भारी तादाद में रहते हैं। करीब तीन करोड़ की आबादी वाला यह समुदाय राज्य विधानसभा की कम से कम 50 सीटों पर निर्णायक स्थिति में है। इस समुदाय को भाजपा का समर्थक माना जाता है, और यह लंबे अरसे से नागरिकता (संशोधन) कानून की मांग कर रहा था। माना जा रहा है कि सीएए लागू होने से नागरिकता और दूसरे मौलिक अधिकारों को लेकर इस समुदाय में पसरी आशंका खत्म हो जाएगी।

स्पष्ट है, सीएए लागू हो जाने के बाद आगामी चुनाव में राजनीतिक परिदृश्य बदल सकता है। केंद्र सरकार ने सीएए के जरिये पश्चिम बंगाल के मतुआ समुदाय और असम में बंगाली हिंदू वोटरों को साधने की कोशिश की है। साल 2011 की जनगणना के अनुसार, असम की 3.12 करोड़ की आबादी में 70 लाख से भी ज्यादा बंगाली हिंदू है। राज्य में असमिया हिंदुओं के बाद बंगाली हिंदू दूसरा सबसे बड़ा हिंदू समुदाय है।

मगर असम समेत तमाम पूर्वोत्तर राज्यों में इस कानून के विरोध से निपटना सरकार के लिए आसान नहीं होगा। सवाल है कि पूर्वोत्तर में इसका इतना विरोध क्यों हो रहा है? दरअसल, असम के लोगों को डर है कि इससे पड़ोसी देशों से आने वाले शरणार्थियों की बाढ़ के कारण असमिया लोगों की भाषा, संस्कृति, इतिहास और पहचान खतरे में पड़ जाएगी। यहां इस बात का जिक्र जरूरी है कि करीब चार साल पहले इस कानून के संसद में पेश होने पर भी असम में इसके खिलाफ भारी हिंसा और आगजनी हुई थी, जिसमें कई लोगों की मौत हो गई थी और यह राज्य लंबे समय तक कर्फ्यू व अशांति की चपेट में रहा।

विरोधियों की दलील है कि सीएए 1985 के उस असम समझौते का उल्लंघन है, जिसे राज्य के लोगों की जीवन रेखा माना जाता है। उस समझौते में कहा गया था कि 25 मार्च, 1971 के बाद असम में अवैध रूप से आने वाले तमाम लोगों को घुसपैठिया मानते हुए राज्य से निकाल दिया जाएगा, जबकि नागरिकता (संशोधन) अधिनियम के तहत 31

दिसंबर, 2014 से पहले पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से भारत आने वाले हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई समुदाय के लोगों को भारतीय नागरिकता देने का प्रावधान किया गया है।

पूर्वोत्तर के दो अन्य राज्यों- त्रिपुरा और मेघालय में छात्र और सामाजिक संगठनों का इस कानून के विरोध में सड़कों पर उतर आना भी अप्रत्याशित नहीं है। इन संगठनों का कहना है कि इस कानून के तहत यहां भारी तादाद में बाहरी लोगों को नागरिकता मिल जाएगी, जिससे जनसांख्यिकीय संतुलन बिगड़ सकता है। जाहिर है, सीएए लागू हो जाने के बाद पश्चिम बंगाल के साथ-साथ पूरे पूर्वोत्तर का चुनावी परिदृश्य काफी दिलचस्प बन गया है। सवाल यही है कि भाजपा इसका चुनावी लाभ उठा पाएगी या विरोधी इसको अपने पक्ष में भुनाने में कामयाब होंगे?